मुखपृष्ठ
साहित्यकारों की वेबपत्रिका
साहित्यसुधा
वर्ष: 5, अंक 100, जनवरी(प्रथम), 2021

परित्यक्त

आरती स्मित

"निकल जाओ मेरे घर से--- अभी और इसी वक़्त। बहुत बड़ी गलती की मैंने, जो तुमपर विश्वास किया और घर घुसने दिया। तुम इस लायक़ ही नहीं कि तुम्हें अपना पति कहूँ या मानूँ।"
क्रोध और आवेश में कांपती निशा रणचंडी का अवतार लगने लगी। उसका ऐसा रौद्र रूप विक्रम ने पहले कभी नहीं देखा था। उसकी बोलती बंद हो गई। आज तक वह बोलता रहा और निशा सुनती रही थी, मगर आज! इतनी बड़ी गलती के बाद वह समझ नहीं पा रहा था कि निशा को कैसे शांत करे। बाजी पलट चुकी थी। उसके सारे झूठ एक-एक कर अपना असली चेहरा दिखाते गए और वह अब और सफ़ाई देने के क़ाबिल न रहा। उसे समझाने, बहलाने और मनाने के सारे रास्ते उसने ख़ुद ही बंद कर दिए थे। अब!

बैसाख की गर्मी और निशा का दो कमरे का फ़्लैट। कोई कूलर या एसी नहीं, टुंगटुंगाता पंखा, मानो दम तोड़ने वाला हो, निशा यहाँ खुश है, घर लौटना नहीं चाहती ,आख़िर क्यों? ... अपने ही परिवार के बीच अजनबी की तरह रहने को वह विवश हो गया। अपने किए पर हाथ मलने के सिवा वह करता भी क्या? आया तो था सुलह करने, पर सुलह का तरीक़ा इतना घटिया था कि निशा का विवेक दम तोड़ गया, यहाँ तक कि बच्चे भी कतराने लगे।

'आह! ये क्या हो गया? क्या सचमुच उससे बड़ी गलती हुई है या निशा के सोचने का ढंग बदल गया? इतनी बोल्ड तो वह कभी नहीं रही, फिर अचानक इन चंद महीनों में क्या हुआ जो वह इतनी निर्भीक हो गई?' वह सोचने लगा।

लाख दरवाज़ा खटखटाने के बाद भी निशा ने अपने बेडरूम का दरवाज़ा नहीं खोला, डरे-सहमे बच्चे पापा की ओर अजनबी निगाहों से देखते हुए माँ से चिमटे कमरे के अंदर चले गए थे । शायद उन्हें भी पिता की करतूत पर यक़ीन नहीं हो रहा था। रह गया था वह--- थका-हारा सा! आख़िरकार उसने बैठक में लगे बिस्तर की शरण ली। रात के बारह बज चुके थे। वह रात जगने का कभी आदी न था, पर आज नींद भी रूठी रही। जाने क्या- क्या सोचता रहा नींद आने तक; सुबह आँख खुली तो रसोई में काम ज़ारी था । बच्चे जग चुके थे और विद्यालय जाने की तैयारी में लगे थे। किसी ने उसे टोका नहीं। वह घूम-फिरकर फिर बैठक में चुपचाप आकर बैठ गया, इतने में बेटी रुचि की आवाज़ सुनाई दी, 'मुझे नहीं पहुँचानी चाय- वाय। पापा ने जो किया उसके बाद भी .... ' दो मिनट बाद गुस्से से तमतमाती रुचि आई और चाय का कप मेज़ पर रखकर चुपचाप चली गई, सिर उठाकर पिता की तरफ देखा तक नहीं। वह अंदर से व्यथित हुआ और क्रोधित भी,

' 'इसकी इतनी मज़ाल! निशा ने इसका भी दिमाग खराब करके रख दिया है। एक बार वापस घर चलो, फिर बताता हूँ, सारी हेकड़ी न निकाल दी तो!' वह बुदबुदाया।

चाय के प्याले ने उसे उम्मीद की घूँट दी। उसे लगने लगा कि बच्चों के विद्यालय जाने के बाद वह निशा को मना लेगा, प्यार से या फिर डरा-धमकाकर। निशा को अपनी प्रतिष्ठा बहुत प्यारी है, जब वह बाहर बालकोनी में निकल कर ज़ोर से चीख-चीख कर कहेगा कि उसने कोई गलती नहीं की तो निशा कॉलोनी में अपना सम्मान बचाने के लिए ज़रूर उसे अंदर कमरे में ले जाएगी और शांति से बात करने की मनुहार करेगी। फिर रोएगी, हर बार की तरह। और मान जाएगी। इतनी भी कठोर नहीं, होती तो मुझे चाय भेजती ही क्यों?' उसने ख़ुद को दिलासा दिया। मगर निशा ने इतना वक़्त नहीं दिया, बच्चों के साथ वह भी तैयार हुई और बैग लेकर बाहर निकल गई, जाते-जाते कहती गई,' टेबल पर खाना है,भूख लगे तो खा लेना '। वह टोकता इसके पहले वह सीढ़ियाँ उतर चुकी थी। 'यह वही निशा है!' वह अपमानित सा सोचता रह गया, निशा ने धक्का देकर निकाला नहीं, पर निकाल ही तो दिया ....

2

वर्ष पूरे न हुए होंगे। निशा के सपनों का महल बनने से पहले ही ध्वस्त हो गया। मकान ने आकार तो ले लिया, पर घर न बन सका। उन दिनों कितनी खुश नज़र आती थी वह! बड़ी बहन दिशा, जो उसके अनकहे दुख- दर्द को समझती, उसे सहलाती, दुलराती, उसे बल देती और कभी -कभी उसकी स्थिति पर रो पड़ती, पर निशा हिम्मत न हारती, कहती,
" दीदी ! यह मकान नहीं, मेरे सपनों का महल है। ऊपर पूरा फ्लोर मेरे मन मुताबिक़ बनेगा। इंजीनियर निशा के नक्शे के अनुसार.... हाहाहाह।"

'मुझे कहाँ रखेगी?'

'अपने कमरे में'

'और विक्रम को ?'

'बैठक में ..... न न ना ... गैरेज में'
फिर ज़ोर से खिलखिलाती। दिशा वर्षों बाद उसे इस तरह खुश देखकर ईश्वर से प्रार्थना करती कि उसकी मुस्कुराहट बनी रहे।"

'चुप! ज़ोर से खिलखिलाएगी तो सास डंडा मारेगी'

'अब और कितना मारेगी दी, उनकी बोली डंडे से कम है क्या?'
वह अचानक उदास हो गई, आँखें चुगली करतीं, उसके पहले ही उसने खुद को संभाल लिया।

'निशा, मुझे मालूम है, यह मकान तेरी ही मेहनत और भागदौड़ का नतीजा है। ठेकेदार से लेकर इंजीनियर तक भागमभाग , फिर घर और बच्चे ! कैसे संभाला सब?' दिशा ने बात बदलने की कोशिश की।

'जैसे तुम सारा कुनबा संभालती हो।'

"एक बात सच-सच बता!'

'क्या?'

"विक्रम में सुधार है या अब भी वैसे ही.... तुम इस बार कुछ ज़्यादा ही कमज़ोर दिख रही हो और वह कुछ ज़्यादा ही लापरवाह?"

"छोड़ो न दी! एक बार अपनी छत हो जाए, स्वास्थ्य भी धीरे-धीरे ठीक हो जाएगा। अभी घर, नौकरी और मकान के निर्माण के कारण ज़रा उलझ-सी गई हूँ, पर तुम चिंता मत करो, सब ठीक हो जाएगा। ... और हाँ, माँ से कुछ न कहना।"

" सारी चिंता क्या सिर्फ़ तुम्हारी है? विक्रम की नहीं?' उसपर तो कोई असर नहीं दिखता। तुम्हारे प्रति भी लापरवाह रहता है । जाने किस दुनिया में मगन रहता है! कोई फिक्र ही नहीं।' दिशा झल्ला पड़ी।
"छोड़ो न दी! उनकी तो आदत है मेरी अवहेलना करने की, आफ्टर ऑल पुरुष है ,दंभ तो रहेगा ही।"

'क्यों, तेरे जीजा पुरुष नहीं हैं क्या?'

"हैं ना, पर पापा को भी तो देखो, माँ कभी उन्हें अपना दोस्त मान सकती है क्या? पापा ने कभी कोई कमी नहीं की, लेकिन क्या माँ को कभी समझ पाए? क्या माँ घुटती नहीं रही अबतक ? सारे मर्द जीजाजी जैसे तो नहीं हो सकते ना! उन्होंने तुम्हारे प्यार को समझा, उसकी इज़्ज़त की, हरएक लड़की की किस्मत में ऐसा प्रेम लिखा नहीं होता ,पर हम बगावत भी नहीं कर सकतीं, करने पर सबसे पहले माँ-बाप ही दोष देंगे, दिए गए संस्कार और झूठी शान की दुहाई देंगे। उनके लिए बेटी के सुख का मतलब पति से रोटी ,कपड़ा और छत मिलना है।.... मगर आजकल तो इससे अधिक कामवाली बाई लेती है और जब जी में आया छुट्टियाँ कर ली, हम पत्नियाँ तो बिन पगार बंधुआ मज़दूरिन हैं।"

निशा की बात का दिशा कोई उत्तर न दे पाई । एक लंबी और गहरी खामोशी धुएँ की तरह हल्के-हल्के पूरे कमरे में फैल गई। एक अनदेखी उदासी, अनकहा शोर दिशा को उस घर में रह-रहकर दिखाई और सुनाई देने लगा था।

'हे ईश्वर! सब शुभ शुभ हो' उसने मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना की।

3

गृह प्रवेश की पूजा का शुभ मुहर्त आ ही गया। रिश्तेदारों से घर भर गया। चारों ओर शोर ही शोर। कभी बच्चे के रोने की आवाज़ तो कभी बड़ों की जरूरतों के मुताबिक़ समय पर सब पूरा कर देने का हंगामा। निशा मशीन बनी भाग-भागकर सबकी सुनती रहती। पर उसके चेहरे पर अब वो खुशी, वो रौनक न थी। शरीर ढीला पड़ गया, रह-रहकर हांफने लगती। उसे देखकर ऐसा लगता,मानो उसमें जीने की चाह न बची हो॥ सूनी आँखें, ठहरी पलकें , बुदबुदाते होंठ और चेहरे पर दहशत और निराशा की मिली-जुली मोती परत, जिसे छिपाने की वह भरपूर कोशिश करती। उसकी हालत देख, दिशा उससे अकेले में बात करने को बेचैन हो उठी।
पूजा, मुंडन , भोज , बिखरा भंडार, मेहमानों के सोने की व्यवस्था -- इन सबसे निपटती हुई निशा ने अचानक आवाज़ लगाई,

'दीदी !सो गई क्या?'

'नहीं तो, बोल! '

'मेरे पास रहो न!'

'हाँ! बता,क्या मदद करूँ?'

'कुछ नहीं दी, ... मैं तुम्हारे पास सो जाऊँ,प्लीज़।' उसकी आवाज़ भर्रा गई ।

'पगली है क्या? ये भी पूछने की बात है!' दिशा ने प्यार से उसे हल्की चपत लगाई और दोनों बहनें बैठक में ही सोने आ गईं।

"निशा !'
हूँ'
" सच- सच बता, क्या बात है? "

'कुछ भी तो नहीं'

"दीदी से झूठ बोलेगी! पिछली बार तमाम परेशानियों के बाद भी तुम्हारे चेहरे पर खुशी की झलक थी, अब जबकि तुम्हारा मकान बनकर तैयार हो गया , तुम उदास और हताश हो? क्या छिपा रही हो ? बता, तुझे मेरी क़सम! "

"दीदी ,विक्रम मेरा सुहाग है, यही दुर्भाग्य है और कुछ नहीं।' उसने ठंडी आह भरी।

"इस दिन के लिए बहुत बड़ी कीमत चुकाई है मैंने। बस! मेरे सपनों का महल बन न सका , उसे किसी की नज़र लग गई। अब कुछ न पूछो, प्लीज़।" वह न चाहते हुए भी सिसकने लगी थी ।

दिशा उसकी अवस्था देखकर आहत तो थी पर बदली स्थिति का कारण समझना चाहती थी। विक्रम से कुछ कहना बेकार था। इस मुलाक़ात में उसके रवैये में गज़ब का बदलाव देख वह हैरान होती रही थी, मेहमान थी,उसपर से निशा की बहन ,सो उसने चुप रहना ही बेहतर समझा। विक्रम बदमिजाज़ है, यह तो वह समझ चुकी थी,पर इतना कि घर आए मेहमान का भी ख्याल न करे। दिल में आया कि विक्रम को जी भरकर जली-कटी सुना डाले , मगर बाद में सारा क्रोध निशा पर ज्वाला बनकर फूटेगा, यह भी वह जानती थी। निशा की सिसकियाँ उसके सब्र का बांध तोड़े जा रही थी।

4

"निशा ! क्या कर रही हो? चलो जल्दी, पंडितजी आते ही होंगे, समय पर विसर्जन होना भी ज़रूरी है। "
दिशा ने मुख्य द्वार से आवाज़ लगाई। कुछ देर के सन्नाटे के बाद उसे विक्रम के चीखने की आवाज़ सुनाई दी,

" घर मन लायक नहीं बना या घर में मन नहीं लगता , यहाँ मुँह सुजाए मत रहो , निकल जाओ मेरे घर से .... चली जाओ अपने किसी यार के साथ!"

'विक्रमजी!'
चीख पड़ी दिशा , "होश में आइए । कुछ कहने से पहले सोच लिया कीजिए। बहुत हुआ नाटक, अब बस कीजिए।"

"दीदी , आप हमारे मामले में दखल मत कीजिए।"
" आपका मामला! निशा मेरी बहन है। और जिस घर में घुसने से पहले उसे निकलने के लिए कह रहे हैं, वह निशा की मेहनत और गुडविल का नतीजा है। आप भी जानते हैं कि निशा की वजह से ही सबने बिना

लिखा-पढ़ी के आपको उधार दिया ,इसके भाइयों, परिचितों, शुभचिंतकों ...किससे उधार नहीं लिया आपने! आज जब काम पूरा हो गया तो उसके चरित्र पर लांछन लगा दिया। शर्म आनी चाहिए आपको!"

"निशा, उठ बहन! चल विसर्जन कर लें।"

निशा, जो अबतक काठ की प्रतिमा बनी स्थिर बैठी थी, स्थिर ही रही, होंठ हिले, शब्द फूटे
" विसर्जन तो हो चुका दी! अब और नहीं।" और कटे वृक्ष की तरह धम्म से गिर पड़ी।
" निशा को मैं साथ ले जा रही हूँ। उसे आराम की सख़्त ज़रूरत है।"
" नहीं, वह नहीं जाएगी। अभी नए घर में शिफ्ट करना है। कितना काम पड़ा है।" विक्रम ने रुखाई से जवाब दिया।

"मैं जाऊँगी।"
निशा ने पूरे आवेश में कहा और विक्रम उसे देखता रह गया। उस घटना के बाद से निशा यों भी उसके प्रति मूक द्रष्टा हो गई थी। न सलाह, न मान मनौव्वल। इस बार उसके अंदर का शीशा न सिर्फ़ दरका, बल्कि चकनाचूर हो गया। आँखों में आँसू की जगह रक्त के थक्के ने ले ली। मायके में भी वह मूक बनी रहती,दिशा के सामने यह थक्का ढुलकता तो वह आपे से बाहर हो जाती। विक्षिप्त -सी हो गई थी वह। विक्रम का नाम सुनते ही चिल्लाने लगती,

" मैं उस घर में वापस नहीं जाऊँगी। वो मुझे मार डालेंगे। मेरे बच्चों को तो दहशत में रखा ही अब मुझे भी माँ बेटे मिलकर मार डालेंगे।"
माँ, पिताजी सब उसकी हालत देखकर परेशान थे, सब यही चाहते थे कि सबकुछ सामान्य हो जाए। पिता ने कभी माँ को समझा नहीं, इसलिए उन्हें विक्रम के व्यवहार में कोई बुराई नहीं दिखती थी,वे माँ से कहते, निशा को ही समझा-बुझाकर वापस भेजो।

"निशा! अब कैसी तबियत है?"
दिशा ने सिर सहलाते हुए पूछा । उत्तर में निशा की आँखों की कोर से दो बूँदें ढुलक गईं।

"दीदी! मैं जीना नहीं चाहती।"

" पगली, तेरे बिना ये बच्चे कैसे रहेंगे, कभी सोचा है? तू पढ़ी-लिखी है, कमा रही है, फिर किस दबाव में जीती है और क्यों?

"यही क्यों तो नहीं समझा सकती दी! काश ! मन का जख्म दिखाने की कोई मशीन होती! विक्रम की वही घिनौनी हरकत अब बर्दाश्त के बाहर है। मैं भी इंसान हूँ। मुझे भी हँसने- मुस्कुराने, साथी बनाने का हक़ है। बाहर काम करती हूँ, कुछ अच्छे दोस्त हैं मेरे। क्यों मैं हरएक कदम उनसे पूछ कर चलूँ जबकि अपना सारा खर्च मैं खुद उठाती हूँ। जब स्वार्थ साधना हुआ, मेरे किसी शुभचिंतक को परिवार का हिस्सा बना लिया, स्वार्थ पूरा हुआ नहीं कि उसे मेरी ज़िंदगी से निकाल फेंकने पर आमादा होते रहे आजतक। पर इस बार नहीं ... अब कभी नहीं सहूँगी उनकी यह बेजा हरकत! जब बात नहीं बनती तो मेरे चरित्र पर उंगली उठाना उनकी आदत बन चुकी है। बस, अब और नहीं दी! अब और नहीं।"

"फिर क्या करेगी ? कैसे निपटेगी उससे? कैसे सुधारेगी उसे ?"

" दीदी! औरत धरती है। उर्वरा होती है, सृजन करती है; अच्छा-बुरा-- सबका बोझ सीने में दबाती है, लेकिन जब धैर्य अपनी सीमा लांघता है तो भूकंप आता है। शहर के शहर नष्ट हो जाते हैं।... वह नदी भी

होती है। किनारे से मिलनेवाले फूल,दीप, कूड़ा-कर्कट, नाले का गंदा पानी, अस्थियाँ, अवशिष्ट-- और भी बहुत कुछ ढोती है, तब भी किनारों को साथ लिए बहती चलती है। मगर जब वह अपना सब्र खोती है तो बाढ़ की विनाशलीला से संसार को हैरान कर देती है। ... सागर में सर्वस्व समाहित करनेवाली यही नदी लहर बन मुस्कुराती है, ठिठोली करती है, मगर इसमें उठनेवाले ज्वार से सागर भी भयभीत रहता है और उसे छेड़नेवाले किनारे भी। "
"निशा, तेरी बड़ी-बड़ी बातें मेरी समझ में नहीं आती। तू अचानक से इतनी असामान्य हो जाती है कि मुझे डर लगने लगता है, मैं तो यही चाहती हूँ कि तू राजी-खुशी अपनी ज़िंदगी जी और बच्चों को खुशहाल ज़िंदगी दे।"

"दी, तुम्हें लगता है कि विक्रम के साथ अब मैं एक कमरे में , कमरा छोड़ो, एक छत के नीचे भी रह पाऊँगी?"

" नहीं रह पाओगी तो चली जाओ कहीं, अपना कमाओ- खाओ। क्यों मोहताज हो? इसलिए कि वह मर्द है?"

"नहीं, इसलिए कि घर के लोग ही मुझे दोष देंगे। सबसे अधिक तो पापा।"

"मैं तुम्हें दोष नहीं दूँगी न ही तुम्हारे जीजा।'

'साथ दोगी?'

'खुलकर नहीं। '

" दीदी, तुम साथ देने का साहस नहीं कर पा रही और मुझसे कहती हो कि बगावत करूँ?"

"तुम्हारे पास डिग्री का बल है। मैं किस बात पर घमंड करूँ?

दिशा का जवाब सुनकर निशा खामोश हो गई---- सागर की तरह अचल। उसके अंदर उठते ज्वार की भनक किसी को नहीं लगी। माँ के पास आए एक पखवारा गुज़र चुका। उसका उठना- बैठना, खाना-पीना सब दिशा के साथ होता। बच्चे भी माँ की हालत समझ नहीं पा रहे थे। पिता कभी दुलार से समझाते कि पति-पत्नी के बीच ऐसे झगड़े होते ही रहते हैं तो कभी क्रोध में चिल्लाते
" किताब ने इसका दिमाग खराब कर दिया है। चार अक्षर क्या पढ़ गई, अपने सामने किसी की सुनती ही नहीं। क्या जवाब दूँ मैं दामाद जी को? "

माँ कहती, " मर्द और कुत्ते में कोई फर्क नहीं है। रोटी दो तो दुम हिलाएगा नहीं तो भौंकेगा। दूसरी जगह हड्डी की लत लग गई तो...." माँ अनिश्चित आशंका से घिर जाती और निशा बिफर उठती,

"तुम क्या चाहती हो? उन्हें खुश रखने के लिए अपनी आत्मा को मार दूँ? माँ! मैं सिर्फ़ देह नहीं; एक मन है मेरा जो आज भी ज़िंदा है, क्यों उसे मारने पर तुले हो तुम सब।"

" तो क्या कर लेगी तू? कल को उसने कहीं और ..... !"

"क्या तुम यही चाहती हो कि वो बार- बार मेरी ज़िंदगी नर्क करते रहें और मैं बार- बार ..... " निशा का गला भर आया।

" ये लो, रोने लगी। अरे बेटा, मैं तो मर्द जात की बात कहती हूँ , गले में पट्टा डालकर रख, नहीं तो... !"

"तो क्या माँ? यही कि मुझे छोड़ देगा। ... बहुत हो गया। तुम कहो कि बोझ हो गई हूँ तो चली जाऊँगी कहीं, मगर मेरे सामने हर समय मातम न मनाओ। मुझे कुत्ते का नहीं, इंसान का साथ चाहिए, जिसके अंदर मेरे लिए संवेदना हो। "
"दुनिया बहुत खराब है, एक अकेली औरत का रहना इतना आसान नहीं।"

" माँ! मुझे औरत बनकर रहना भी नहीं। जिस आग में पूरी ज़िंदगी जलती रही हो, क्यों चाहती हो कि मैं भी वैसे ही तिल-तिल जलूँ! तुम्हारे बताए रास्ते पर आजतक चलकर क्या मिला मुझे ? मर्यादा और संस्कार के नाम पर कबतक मेरी साँसें छीनती रहोगी? बोलो! "

माँ-बेटी की बात को चुपचाप सुन रहे पिता अचानक गरज उठे,
" इसने क़सम खा ली है ,मेरी नाक कटा कर ही दम लेगी।"

फिर निशा से मुखातिब होते हुए बोले," विक्रम पति है तुम्हारा। उसने चार बातें कह भी दीं तो क्या? धक्का मारकर निकाला तो नहीं।"

" आपलोग उसी दिन के इंतज़ार में हैं, लेकिन वह दिन कभी नहीं आएगा --- कभी नहीं।"

पिता के सामने निशा भी फूट पड़ी थी, शायद पहली बार उसने पिता को इस तरह जवाब दिया था। उसका चिड़चिड़ापन बढ़ता गया। हठी भी हो चली। सुकून की तलाश में वह दूसरे रिश्तेदार के घर भी गई, पर वहाँ भी उसने वह स्नेह न पाया,उसे लगा जैसे वह वहाँ बोझ हो। अपमानित ज़िंदगी जीने से बेहतर उसने विद्रोह का बिगुल बजाना ही उचित समझा। कहीं न कहीं दिशा की कही गई बातें उसे घर कर गई थी। वह विक्रम को चेताती आई कि यदि उसे साथ चाहिए तो वह निशा को बच्चों के साथ दूसरे शहर जाने दे और आ-आकर मिलता-जुलता रहे, बहुत रोटी सेंक ली अब वह भी जीना चाहती है। विक्रम ने हामी तो भर दी, मगर निशा की भावी ज़िंदगी में जहर घोलने का जो घिनौना काम उसने किया , यह अपने मित्रों और रिश्तेदारों के बहकावे में आकर किया या उसकी कोई योजना थी, यह न निशा समझ पाई न उसके मायकेवाले।

5

निशा अब वह निशा न थी और न ही पिता के भय से कांपनेवाले बच्चे रहे। विक्रम उसे जलील करने गया था, कहाँ अनुमान कर पाया कि बेड़ियों की जकड़न से मुक्त पाँव कितने सशक्त हो उठते हैं! निशा गली पार कर आँखों से ओझल हो चुकी थी, उसने एक बार भी पलट कर पति की तरफ़ नहीं देखा। वह परित्यक्त, विस्मित आँखों से उस राह को निहारे जा रहा था,जिससे गुज़रकर निशा गई थी अभी-अभी और कानों में अबतक उसके धिक्कार के स्वर गूंज रहे थे ---
" पति पत्नी की भावना और उसकी अस्मिता का रक्षक होता है, उसकी साँसों का पहरेदार नहीं। आपने मेरी माँग के सिंदूर को राख़ में बदल दिया। क्या समझा आपने, मेरे चरित्र पर लांछन लगाते रहेंगे और मैं चुपचाप आपके बिस्तर की चादर बनती रहूँगी! साथ होना तो दूर की बात है, मुझे छूने की भी कोशिश की तो जेल भिजवा दूँगी। अरे, बलात्कारी भी दूसरे का शोषण करता है ,मगर आपने -- आपने न केवल मेरे तन को बल्कि मेरे मन को इतनी बार रौंदा कि अब हमारा रिश्ता लाश में तब्दील हो चुका है और मैं बंदरिया नहीं जो लाश को सीने से चिपकाए इधर-उधर कूदती- फाँदती फिरूँ--- मैं--- आपकी पत्नी, आपसे पति होने का हक़ छीनती हूँ----त्याग करती हू आपका । आज से आपका समाज आपको मेरे परित्यक्त के रूप में ही जानेगा ---- "

कृपया रचनाकार को मेल भेज कर अपने विचारों से अवगत करायें